Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

स्वामी विवेकानंद जी की दार्शनिक विचारधारा

Soan Kiran Sharma[1]* Dr. Mamta Sharma[2]

[1] Research Scholar, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

[2] Professor, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

सार – ***विवेकानन्द वेदान्त दर्शन के अनुयायी थे। वे वेदान्त को सर्वोच्च दर्शन और सर्वोच्च धर्म मानते थे। अद्वैत वेदान्त के अनुसार विश्व में केवल एक ही तत्व है जिसे ब्रह्म नाम दिया जाता है। सगुण रूप में यही ईश्वर कहलाता है। ईश्वर ही जगत का सृष्टा है। ब्रह्म के रूप में जगत् सत्य है और ब्रह्म से अलग वह माया एवं मिथ्या है। जगत् को ब्रह्म के रूप में देखना ही सही ज्ञान है।***

----------X----------

अद्वैत वेदान्त दर्शन:

मनुष्य शरीर धारण करते हुए जीव कहलाता है किन्तु यह शरीर नश्वर है और परिवर्तनशील है। मूलरूप में जो विभु में है वही अणु में भी है। इस प्रकार मनुष्य भी मूल रूप से ब्रह्म ही है जो कि मनुष्य में आत्मा कहलाता है। आत्मा के वे ही सब लक्षण हैं जो ब्रह्म के हैं। मनुष्य को यह जानना है कि वह निरपेक्ष, एक अद्वय ब्रह्म है। इस साक्षात्कार को ही मुक्ति कहते हैं। वेदान्त के इन सब विचारों को विवेकानन्द मानते थे और उन्होंने देश-देशान्तर में अपने भाषणों में इन्हीं मूल सत्यों को नाना प्रकार के उदाहरणों से समझते हुए और आधुनिक परिपे्रक्ष्य में ज्ञान-विज्ञान के विकास से तर्क देते हुए प्रसारित करने का प्रयास किया। अस्तु, मूल रूप से विवेकानन्द के विचार अद्वैत वेदान्त का समर्थन करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे वेदान्त की अन्य व्याख्याओं को झूठा ठहराते हैं। वेदान्त की द्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा अन्य व्याख्याओं का भी अपना सत्य है। विवेकानन्द का तो यही आग्रह था कि अद्वैत, वेदान्त की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या है। उन्होंने कहा था, 'वेदान्त के अन्तर्गत सभी सम्प्रदाय आ जाते हैं। हम लोग यह स्मरण कर प्रसन्न होते हैं कि सभी मार्ग ईश्वर की ओर ले जाते हैं तथा विश्व का सुधार इस पर निर्भर नहीं करता है कि सभी ईश्वर को हमारी ही आँखों से देखें।'[1] इस प्रकार अन्य दर्शनों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते हुए विवेकानन्द अद्वैत दर्शन को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। यहाँ पर उनके दार्शनिक विचारों का उसी क्रम से विवेचन किया जाएगा जिस क्रम से वेदान्त दर्शन में किया जाता है।

परमतत्व-ब्रह्म:

विवेकानन्द के अनुसार, 'वेदान्त का मूल सिद्धान्त यह एकतत्व अथवा अखंड भाव है। द्वित्व कहीं नहीं है, दो प्रकार का जीवन अथवा जगत् भी नहीं है-'एकमात्र जीवन है, एकमात्र जगत् है, एकमात्र सत् है। सब कुछ वही एक सत्ता मात्र है, भेद केवल परिमाण का है, प्रकार का नहीं।'[2] उपनिषदों में ब्रह्म का इसी प्रकार से उल्लेख किया गया है और इस एक तत्व की व्याख्या करने के लिए अनेक उदाहरण दिए गए हैं। विवेकानन्द ने इन सब उदाहरणों का अपने व्याख्यानों में व्यापक प्रयोग किया है। उन्होंने बार-बार वेदान्त की इस शिक्षा की ओर ध्यान दिलाया कि 'जगत् को ब्रह्म स्वरूप देखो।' उनका कहना था, 'वेदान्त में बैराग्य का अर्थ है जगत् को ब्रह्म रूप देखना, जगत् को हम जिस भाव से देखते हैं, उसे हम जैसा जानते हैं, वह जैसा हमारे सम्मुख प्रतिभात होता है, उसका त्याग करना और उसके वास्तविक स्वरूप को पहचानना। उसे ब्रह्म स्वरूप देखो, वास्तव में वह ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण सबसे प्राचीन उपनिषद में हम देखते हैं 'ईशावास्यामिदं सर्व यात्किंच जगत्यान् जगत्' जगत् में जो कुछ है वह सब ईश्वर से अण्छन्न है।'[3]

ब्रह्म और ईश्वर:

ब्रह्म के सगुण रूप को ईश्वर कहते हैं। इस प्रकार सगुण और निर्गुण ये दोनों ही एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। इसे स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द ने कहा है, 'मेरा विचार है कि जिसे तुम सगुण ईश्वर कहते हो वह निर्गुण ब्रह्म ही है एक ही साथ सगुण भी और निर्गुण ईश्वर भी। हम लोग सगुणीकृत निर्गुण आत्माएँ

www.ignited.in

हैं-तुम में से प्रत्येक विश्वात्मा है, प्रत्येक सर्वव्यापक है। ईश्वर एक वृत्त है जिसकी परिधि कहीं नहीं है और केन्द्र सर्वत्र है। उस वृत में प्रत्येक बिन्दु सजीव, सचेतन, सक्रिय और समान रूप से क्रियाशील है। हम सीमित आत्माओं में केवल एक बिन्दु सचेतन है और वह केन्द्र आगे पीछे गतिशील रहता है। जिस प्रकार विश्व की तुलना में शरीर की सत्ता अत्यल्प है, उसी प्रकार ईश्वर की तुलना में समस्त विश्व कुछ नहीं है। जब हम कहते हैं, ईश्वर बोलता है, तो उसका अर्थ है कि वह अपनी सृष्टि के माध्यम से बोलता है। जब हम उसका वर्णन उसे देशकाल से परे कहकर करते हैं तब हम कहते हैं कि वह निर्गुण सत्ता है।'[4]

ईश्वर और आत्मा:

ईश्वर और आत्मा का सम्बन्ध सभी धर्मों की विवेचना का विषय रहा है, वेदान्त में इसे अत्यन्त घनिष्ठ माना गया है। इसे स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द ने कहा है, 'ईश्वर के सम्बन्ध में हमारी धारणा हमारी अपनी प्रतिच्छाया है।'[5] 'इसलिए जीवात्मा का सम्बन्ध परमात्मा से ही होना चाहिए। परमात्मा शाश्वत है। वह अपाणिपाद होकर भी सब कुछ ग्रहण करता है, सर्वत्र विचरता है, वह अरूप है, अमर है, शाश्वत है। परमात्मा का तत्त्व निरुपण हुआ। जीवात्मा जिस प्रकार शरीर का प्रभु है उसी प्रकार परमात्मा जीवात्माओं का प्रभु है। जीव शरीर से मुक्त हो जाये तो पलभर के लिए भी शरीर-शरीर में नहीं रह पाता। वह परमात्मा जीवात्मा से अलिप्त हो जाए तो जीवात्मा की स्थिति ही नहीं रह पाती। विश्व सृष्टि विधायक है, कालकवलित होने वालों के लिए महाकाल है। मृत्यु तथा जीवन उसकी छायाएँ मात्रा हैं।'[6]

आत्मानम् विद्धि:

वेदान्त का सबसे बड़ा उपदेश यह है कि मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को समझे। यह वास्तविक स्वरूप ही आत्मा है। अस्तु वेदान्त में आत्मा की खोज, उसकी प्रकृति और संसार से उसकी मुक्ति के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है। विवेकानन्द ने अपने व्याख्यानों में सबसे अधिक इन्हीं की व्याख्या की है। इस व्याख्या में जहाँ एक ओर उन्होंने स्थान-स्थान पर उपनिषदों के विचारों का उल्लेख किया है वहाँ दूसरी ओर अपने चारों ओर के जीवन से और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के उदाहरणों से उसे पुष्ट करने का प्रयास किया है। आरम्भ से ही वे अत्यधिक बुद्धिवादी और तर्कशील थे। उनकी इसी विशेषता अर्थात् विवेक करने की शक्ति को देखते हुए ही खेत्री के राजा ने उन्हें विवेकानन्द नाम ग्रहण करने का सुझाव दिया था। अस्तु उनके व्याख्यानों में सब कहीं प्रत्येक विचार को तर्क से पुष्ट करने का प्रयास किया गया। उन्होंने कहा था, 'मेरा आशय वही है, जो आज का हर शिक्षित स्त्री या पुरुष चाहता है, अर्थात् लौकिक ज्ञान के आविष्कारों को धर्म क्षेत्र में प्रयुक्त करना। बुद्धि का आदि तत्त्व है। विशेष को सामान्य से, सामान्य को अधिक सामान्य से और अन्त में सबको सार्वभौम सामान्य से, अन्तिम सामान्य प्रत्येक जो हमारे पास है, ऐसी व्यापकतम धारणा, सत्ता की धारणा से सम्बद्ध करना है सत्ता की धारणा है महत्तम व्यापक धारणा है।'[7] यह सत्ता ब्रह्म है। यह ब्रह्म ही आत्मा है। इस प्रकार, सब कुछ आत्मा और ब्रह्म से ही सिद्ध होता है, उन्हीं के प्रसंग में ही वह सार्थक होता है।

आत्मा का स्वभाव:

आत्मा के मुक्त स्वभाव को स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द ने लिखा है, 'किन्तु वह ब्रह्माण्ड की एक अनन्त सत्ता है एवं वही सत्ता स्वरूप हम भी हैं। हम भी वह हैं, तुम भी वह हो उसके अंश नहीं, समग्र वही।'[8] यह आत्मा जगत् में कैसे आया इसका अर्थ अधिकतर वेदान्तियों ने विकास के लिए परम सत्ता का अन्तर भाव माना है। आत्मा जगत् में इसीलिए आती है ताकि जगत् का विकास हो सके। विवेकानन्द के शब्दों में, 'प्रत्येक विकास के पहले एक अन्तर भाव रहता है, प्रत्येक व्यक्ति दशा के पहले उसकी अव्यक्त दशा रहती है। मनुष्य इस शृंखला की एक कड़ी है।'9 किन्तु जगत् में आत्मा स्वयं विकसित नहीं होती। विकास तो प्रकृति का होता है। आत्मा कार्यकारण नियम से परे है। इसे स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द ने कहा था, 'मनुष्य की आत्मा कार्य कारण नियम से परे होने के कारण सम्मिश्रण नहीं है, किसी कारण का परिणाम नहीं है, अतएव वह नित्यमुक्त है और नियम के भीतर जो कुछ सीमित है उस सब का शासनकत्र्ता है। चूंकि वह सम्मिश्रण नहीं है इसलिए उसकी मृत्यु कभी न होगी। जब आत्मा की मृत्यु नहीं हो सकती तो उसका जन्म भी नहीं हो सकता क्योंकि जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु की दो विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। अतएव आत्मा जन्म और मृत्यु से परे है।'[10]

आत्मा और प्रकृति:

यह आत्मा मनुष्य में बुद्धि के माध्यम से मन और इन्द्रियों के द्वारा जगत् का अनुभव करती है। ये सब आत्मा के साधन हैं। आत्मा इन सब पर शासन करती है। विवेकानन्द के शब्दों में, 'वह इन सभी यन्त्रों की शासक है, घर की स्वामी है तथा शरीर का सिंहासनारूढ़ राजा है। अहंकार, बुद्धि और चिन्तन

www.ignited.in

की शक्तियाँ, इन्द्रियाँ, उनके यन्त्र, शरीर और ये सब उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। इन सब को प्रकाशित करने वाला वही है।'[11] आत्मा का निर्माण भौतिक तत्वों से नहीं हुआ है। यह एक अविभाज्य इकाई है। इसलिए यह अनिवार्यतः अविनाशी है। इसी कारण इसका अनादि और अनन्त होना भी अनिवार्य है। अतः आत्मा अनादि एवं अनन्त है।[12]

आत्मा का लक्ष्य:

विवेकानन्द ने मनुष्य के लक्ष्य की उसी प्रकार व्याख्या की है जैसे कि प्राचीन उपनिषदों में मिलती है। उनके अपने शब्दों में, 'भारत में सभी विभिन्न सम्प्रदायों में आत्मा का लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है। उन सब में एक ही धारणा मिलती है और वह है मुक्ति की। मनुष्य असीम है, परन्तु अभी जिस सीमा में उसका अस्तित्व है, वह उसका स्वरूप नहीं है किन्तु इन सीमाओं के मध्य वह अनन्त, असीम, अपने जन्मसिद्ध अधिकार, अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने तक, आगे और ऊपर बहने के निमित्त संघर्ष कर रहा है।'[13] आत्मा परिवर्तनशील वस्तु, अमर, शुद्ध, सदामंगलमय है। सभी प्राणियों में उसी शुद्ध और पूर्ण आत्मा का अस्तित्व है।

आत्मा और ब्रह्म:

आत्मा और ब्रह्म का अथवा आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध बतलाते हुए स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषदों के महावाक्यों जैसे अयमात्या ब्रह्म, सोहमस्मि, तत्वमसि इत्यादि की ओर संकेत किया है और उनके अर्थों की व्याख्या की है। यह ब्रह्म अथवा परमात्मा से तादात्मय की अवस्था ही मोक्ष है। यही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य है। इसी लक्ष्य की ओर विभिन्न धर्म भिन्न-भिन्न रूप में उन्मुख हैं। यही धर्म का सार तत्व है क्योंकि धर्म भगवत प्राप्ति है। यही विभिन्न धर्मों का प्रयोजन है। वेदान्त यही स्थिति प्राप्त करने का उपदेश देता है। विवेकानन्द के शब्दों में, 'एक आत्मा है जो इन सारी चीजों से परे है, जो अपरिमेय है, जो ज्ञात से तथा ज्ञेय से परे है हम उसी में तथा उसी के माध्यम से विश्व को देखते हैं। एकमात्र सत्य वही है।'[14]

माया: जगत्:

शंकराचार्य के समान ही विवेकानन्द ने जगत् को माया कहा है और माया का विशिष्ट अर्थ बतलाया है। वास्तव में जब व्यक्ति संसार के माया रूप को समझ लेता है तभी वह मुक्त कहा जा सकता है। यह जड़जगत् ब्रह्म का अध्यारोप मात्र है। देश काल निमित्त में से होकर ब्रह्म स्वयं जगत् बन जाता है। यह प्रश्न स्वविरोधी है कि पूर्ण ब्रह्म सत्ता से जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ क्योंकि इस प्रश्न में ब्रह्म ओर जगत् को दो स्वतंत्रा सत्तायें माना गया है जबकि वास्तविकता ऐसे नहीं है। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है वह देशकाल में जगत् प्रतीत होता है। जगत् को इस ब्रह्म रूप में देखना ही सच्ची मुक्ति है। इस प्रकार मायावाद, पलायनवाद नहीं सिखाता बल्कि उल्टे जगत् के माया स्वरूप को जान लेने से हर प्रकार के कष्ट सहन करने की शक्ति मिलती है। यह माया हमें चारों ओर से घेरे हुए है और वह अति भयंकर है। फिर भी हमें माया में से होकर ही कार्य करना पड़ता है। वास्तव में माया संसार की गति का तथ्यात्मक वर्णन है। ध्यान देने से प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है कि यह संसार माया है।यह स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द ने लिखा है, 'इस प्रकार हम देखते हैं कि माया संसार की व्याख्या करने के निमित्त कोई सिद्धान्त नहीं है। वह संसार की वस्तुस्थिति का वर्णन मात्र है, विरोध ही हमारे अस्तित्व का आधार है, सर्वत्र इन्हीं प्रचण्ड विरोधों के माध्यम से हमें जाना होगा। जहाँ शुभ है वहीं अशुभ भी है और जहाँ अशुभ है वहाँ अवश्य कुछ शुभ भी है। जहाँ जीवन है वहीं मृत्यु छाया की भांति उसका अनुसरण कर रही है। जहाँ सुख उत्पन्न करने वाली शक्ति विद्यमान है, दुःख देने वाली शक्ति भी वहीं छिपी है। अतएव वेदान्त दर्शन आशावादी भी नहीं है और निराशावादी भी नहीं। वह तो दोनों ही वादों का प्रचार करता है, सारी घटनायें जिस रूप में होती हैं वह उन्हें बस उसी रूप में ग्रहण करता है।'[15]

व्यावहारिक जीवन में वेदान्त:

इस प्रकार विवेकानन्द ने आधुनिक परिस्थितियों में वेदान्त को उपयोगी दिखलाया है। उन्होंने नाना प्रकार के उदाहरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वेदान्त मनुष्य के जीवन को श्रेष्ठ बनाता है। उसकी सहायता से मनुष्य मृत्यु के भय को जीत लेता है। विवेकानन्द के शब्दों में, 'भिन्न-भिन्न दर्शनों का इस विषय में मतैक्य देखा जाता है कि आत्मा का स्वरूप जो कुछ भी हो उसका कोई रूपाकार नहीं होता और जिसका रूपाकार नहीं, वह अवश्य सर्वव्यापी होगा। काल का आरम्भ मन से होता है-देश भी मन के अन्तर्गत है। काल को छोड़ कार्य-कारणवाद नहीं रह सकता। अतएव, देशकाल-निमित्त से अतीत है, तो अवश्य अनन्त होगी। अब हमारे दर्श का उच्चतम विचार आता है। अनन्त कभी दो नहीं हो सकता। यदि आत्मा अनन्त है, तो केवल एक ही आत्मा हो सकती है और यह जो अनेक आत्माओं की धारणा है-तुम्हारी एक आत्मा, मेरी दूसरी आत्मा-यह सत्य नहीं है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह अनन्त और सर्वव्यापी है और यह प्रतिभासित जीव मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमाबद्ध भावमात्र है। इसी अर्थ में पूर्वोक्त

www.ignited.in

पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रतिभासिक जीव, चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, मनुष्य के इस अतीन्द्रिय, प्रकृत स्वरूप का धुंधला प्रतिबिम्ब मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप आत्मा कार्य-कारण से अतीत होने के कारण, देशकाल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्त स्वभाव है। वह कभी बद्ध नहीं थी, न ही बद्ध हो सकती थी। यह प्रतिभासिक जीव, यह प्रतिबिम्ब, देश-काल-निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारणबद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिकों की भाषा में, प्रतीत होता है, मानो वह बद्ध हो गयी है, पर वह वास्तव में बद्ध नहीं है। हमारी आत्मा के भीतर जो यथार्थ सत्य है, वह यही कि आत्मा सर्वव्यापी है, अनन्त है, चैतन्य स्वभाव है, हम स्वभाव से ही वैसे हैं-हमें प्रयत्न करके वैसा नहीं बनना पड़ता। प्रत्येक आत्मा अनन्त है, अतः जन्म और मृत्यु का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।'[16]

संदर्भ सूची:

1. विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खण्ड, अद्वैत आश्रम, 5 दिही एन्टाली रोड, कोलकाता-14, पृ. 258
2. विवेकानन्द साहित्य, अष्टम खण्ड, पृ. 8
3. वही, पृ. 150
4. वही, पृ. 118-119
5. वही, पृ. 166
6. वही, पृ. 108
7. वही, द्वितीय खण्ड, पृ. 280
8. वही, अष्टम खण्ड, पृ. 69
9. वही, पृ. 80
10. वही, पृ. 18
11. वही, द्वितीय खण्ड, पृ. 85
12. वही, अष्टम खण्ड, पृ. 59
13. विवेकानन्द साहित्य, अष्टम खण्ड, पृ. 97
14. वही, पृ. 52-53
15. वही, द्वितीय खण्ड, पृ. 10-11
16. वही, अष्टम खण्ड, पृ. 15

Corresponding Author

Soan Kiran Sharma*

Research Scholar, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

www.ignited.in